



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2021; 7(2): 29-31

© 2021 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 25-01-2021

Accepted: 27-02-2021

डॉ. सुजाता शाण्डिल्य

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत साहित्य)
श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत
महाविद्यालय दतिया, मध्य प्रदेश,
भारत

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार अष्टांगयोग पद्धति

डॉ. सुजाता शाण्डिल्य

प्रस्तावना

सहप्रज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति:।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१॥

गीता उपदेशानुसार इस कलियुग में जो लोग पर्याप्त बुद्धिमान हैं, वे भगवान् की उनके पार्षदों सहित संकीर्तन-यज्ञ द्वारा पूजा करेंगे। वास्तव में हम अपने शरीर से नहीं, अपितु अपने मन तथा बुद्धि से कर्म करते हैं। अतएव यदि मन तथा बुद्धि सदैव परमेश्वर के विचार में मग्न रहें तो स्वाभाविक है कि इन्द्रियाँ भी उनकी सेवा में लगी रहेगी। इन्द्रियों के कार्य बाहर से तो वे ही रहते हैं, लेकिन चेतना बदल जाती है। भगवद्गीता हमें सिखाती है कि किस प्रकार मन तथा बुद्धि को भगवान् के विचार में लीन रखा जाये। ऐसी तल्लीनता से मनुष्य भगवद्धाम को जाता है। यदि मन कृष्ण की सेवा में लग जाता है तो सारी इन्द्रियाँ स्वतः उनकी सेवा में लग जाती है। यह कला है और यही भगवद्गीता का रहस्य भी है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् अष्टांगयोग पद्धति को मन तथा इन्द्रियों को वश में करने का साधन बताते हैं। किन्तु इस कलियुग में सामान्य जन के लिए इसे सम्पन्न कर पाना अत्यन्त कठिन है। अष्टांगयोग में सर्वप्रथम योग को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि परमेश्वर से युक्त होने की विधि योग कहलाती है। इसकी तुलना उस सीढ़ी से की जा सकती है, जिससे सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त की जाती है। यह सीढ़ी जीव की अधम अवस्था से प्रारम्भ होकर आध्यात्मिक जीवन के पूर्ण आत्मसाक्षात्कार तक जाती है। विभिन्न चढ़ावों के अनुसार इस सीढ़ी के विभिन्न भाग भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं। किन्तु कुल मिलाकर यह पूरी सीढ़ी योग कहलाती है और इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। ज्ञानयोग, ध्यानयोग तथा भक्तियोग। सीढ़ी के प्रारम्भिक भाग को योगरुरुक्षु अवस्था और अन्तिम भाग को योगारूढ कहा जाता है।

जबकी अष्टांगयोग का सम्बन्ध है, विभिन्न यम-नियमों तथा आसनो (जो प्रायः शारीरिक मुद्राएँ ही हैं) के द्वारा ध्यान में प्रविष्ट होने के लिए आरम्भिक प्रयासों को सकाम कर्म माना जाता है। ऐसे कर्मों से पूर्ण मानसिक सन्तुलन प्राप्त होता है।

जिससे इन्द्रियाँ वश में होती हैं। जब मनुष्य पूर्ण ध्यान में सिद्धहस्त हो जाता है तो विचलित करने वाले समस्त मानसिक कार्य बन्द हुए माने जाते हैं।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥२॥

जिसने मन को जीत लिया है, उसने पहले ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, क्योंकि उसने शान्ति प्राप्त करली है। ऐसे पुरुष के लिए सुख - दुख, सर्दी-गर्मी एवं मान-अपमान एक से है अर्थात् प्रत्येक जीव उस भगवान् की आज्ञा का पालन करने के निमित्त आया है, जो जन-जन के हृदयों में परमात्मा-रूप में स्थित है। जब मन बाहरी माया द्वारा विपथ कर दिया जाता है तब मनुष्य भौतिक कार्यकलापों में उलझ जाता है। अतः ज्योंही मन किसी योगपद्धति द्वारा वश में आ जाता है, त्योंही मनुष्य को लक्ष्य पर पहुँचा हुआ मान लिया जाना चाहिए। मनुष्य को भगवद् - आज्ञा का पालन करना चाहिए। जब मनुष्य का मन परा - प्रकृति में स्थिर हो जाता है, तो जीवात्मा के समक्ष भगवद् - आज्ञा पालन करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता है। मन को किसी न किसी उच्च आदेश मानकर उसका पालन करना होता है। मन को वश करने से स्वतः ही परमात्मा के आदेश का पालन करना होता है। जिससे भक्त संसार के द्वन्द्वों यथा सुख - दुख, सर्दी गर्मी आदि से अप्रभावित रहता

Corresponding Author:

डॉ. सुजाता शाण्डिल्य

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत साहित्य)
श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत
महाविद्यालय दतिया, मध्य प्रदेश,
भारत

है। यह अवस्था व्यावहारिक समाधि या परमात्मा में तल्लीनता है। वह व्यक्ति आत्म साक्षात्कार को प्राप्त तथा योगी कहलाता है, जो अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया संतुष्ट रहता है। ऐसा व्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त तथा जितेन्द्रिय कहलाता है। वह सभी वस्तुओं को चाहे वे कंकड़ हो, पत्थर हो या कि सोना एक समान दिखता है। अर्थात् परमसत्य की अनुभूति के बिना कोरा ज्ञान व्यर्थ होता है।

श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्रहामिन्द्रियैः ।
सेवोन्मुखे हि जिहवावदौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥३॥

यह भगवद्गीता कृष्णभावनामृत का विज्ञान है। मात्र संसारी विद्वत्ता से कोई कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकता। उसे विशुद्ध चेतना वाले व्यक्ति का सानिध्य प्राप्त होने का सौभाग्य मिलना चाहिए। आध्यात्मिक ज्ञान से मनुष्य अपने संकल्पों में दृढ़ रह सकता है, किन्तु मात्र शैक्षिक ज्ञान से वह बाह्य विरोधाभासों द्वारा मोहित और भ्रमित होता रहता है। केवल अनुभवी आत्मा ही आत्मसंयासी होती है। योगी को चाहिये कि वह सदैव अपने शरीर, मन तथा आत्मा को परमेश्वर में लगाए, एकान्त स्थान में रहे और बड़ी सावधानी के साथ अपने मन को वश में करे। उसे समस्त आकाशांशों तथा संग्रहभाव की इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए।

योगी का पहला कर्तव्य है कि वह कृष्ण पर अपना ध्यान सदैव एकाग्र रखे। उसे सदैव कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार मन को एकाग्र करने के लिए सदैव एकन्तवास करना चाहिए क्योंकि मन एकाग्रता ही समाधि कहलाती है। योगी को चाहिए कि वह अनुकूल परिस्थितियों को ग्रहण करे और प्रतिकूल परिस्थितियों को त्याग कर दे।

योगाभ्यास के लिए योगी एकान्त स्थान में जाकर भूमि पर कुशा बिछा दें और फिर उसे मृगछाला से ढके तथा ऊपर से मुलायम वस्त्र बिछा दे। आसन न तो बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। यह किसी तीर्थस्थान में स्थित हो। योगी को चाहिए कि इस पर दृढतापूर्वक बैठ जाये और मन, इन्द्रियों तथा कर्मों को वश में करतें हुए तथा मन को बिन्दु पर स्थित करके हृदय को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यास करें। जिसका मन विचलित है और जो आत्मसंयमी नहीं है, वह ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकता।

अतः बृहद्नारदीय पुराण में कहा गया है कि कलियुग में लोग अल्पजीवी, आत्म-साक्षात्कार में मन्द तथा चिन्ताओं से व्यग्र रहते हैं, भगवत्प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन ही है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जीवन का उद्देश्य कृष्ण को जानना है जो प्रत्येक जीव के जो प्रत्येक जीव के हृदय में चतुर्भुज परमात्मा रूप में स्थित है। योगाभ्यास का प्रयोजन विष्णु के इसी अन्तर्यामी रूप की खोज करना है। योगाभ्यास करने वाले को चाहिए कि वह अपने शरीर, गर्दन तथा सिर को सीधा रखें और नाक को अगले सिर पर दृष्टि लगाए।

इस प्रकार वह अविचलित तथा दमित मन से, भयरहित, विषयीजीवन से पूर्णतया मुक्त होकर अपने हृदय में कृष्ण चिन्तन करें और मुझे ही अपना चरमलक्ष्य बनाए।

योगाभ्यास किसी भौतिक सुविधा प्राप्ति के लिए नहीं किया जाता, इसका उद्देश्य तो भौतिक संसार में विरक्ति प्राप्त करना है। जो कोई इसके द्वारा स्वास्थ्य लाभ चाहता है। या भौतिक सिद्धि प्राप्त करने का इच्छुक होता है, वह भगवद्गीता के अनुसार योगी नहीं है। न ही भौतिक अस्तित्व की समाप्ति का अर्थ शून्य में प्रवेश है। इससे शरीर, मन तथा कर्म में निरन्तर संयम का अभ्यास करते हुये संयमित मन वाले योगी को इस भौतिक अस्तित्व की समाप्ति पर भगवद्भ्रम की प्राप्ति होती है।

एक पूर्ण योगी जिसे भगवान् कृष्ण का पूर्ण ज्ञान है। जैसा कि यहाँ पर भगवान् ने स्वयं कहा है कि (मच्चित्तः/मत्परः/मत्स्थानम्)

वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सकता है और अन्ततोगत्वा कृष्णलोक या गोलोक वृन्दावन को प्राप्त होता है।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः ॥४॥

यद्यपि भगवान् सदैव अपने धाम में निवास करते हैं, जिसे गोलोक कहते हैं, तो भी वे अपनी पराध्यात्मिक शक्तियों के कारण सर्व व्यापी ब्रह्म तथा अन्तर्यामि परमात्मा है कोई भी कृष्ण तथा विष्णु रूप में उनके पूर्ण विस्तार को सही-सही जाने बिना वैकुण्ठ में या गोलोक वृन्दावन में प्रवेश नहीं कर सकता। अतः कृष्ण में भावनाभावित व्यक्ति ही पूर्ण योगी है।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति ॥५॥

वेदों में भी हम पाते हैं कि केवल भगवान् कृष्ण को जानने पर जन्म तथा मृत्यु के पथ को जीता जा सकता है। दुसरे शब्दों में, योग की पूर्णता संसार से मुक्ति प्राप्त करने में है, इन्द्रजाल अथवा व्यायाम के करतबों द्वारा अबोध जनता को मूर्ख बनाने में नहीं।

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः ।
न चातिस्वप्रशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥६॥

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता उसके योगी बनने की कोई सम्भावना नहीं है। अर्थात् तमोगुणी योगी बनने के लिए उचित नहीं है। बल्कि जो खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा काम करने की आदतों में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशों को नष्ट कर सकता है।

यदा विनियतं चित्तामात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥७॥

जब योगी योगाभ्यास द्वारा अपने मानसिक कार्यकलापों को वश में कर लेता है और अध्यात्म में ही स्थित हो जाता है अर्थात् समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हो जाता है, तब वह योग में सुस्थिर कहा जाता है, जिस प्रकार वायु रहित स्थान में दीपक हिलता-डुलता नहीं, उसी तरह जिस योगी का मन वश में होता है वह आत्मतत्त्व के ध्यान में सदैव स्थिर रहता है।

योगाभ्यास से मनुष्य भौतिक धारणाओं से कमशः विरक्त हो जाता है। वह योग का प्रमुख लक्षण है। इसके बाद समाधि में स्थित हो जाता है। सिद्धि की अवस्था में, जिसे समाधि कहते हैं, मनुष्य का मन योगाभ्यास के द्वारा भौतिक मानसिक क्रियाओं से पूर्णतया संयमित हो जाता है। इस सिद्धि की विशेषता यह है कि मनुष्य शुद्ध मन से अपने को देख सकता है और अपने आप में आनन्द का अनुभव कर सकता है। उस आनन्दमयी स्थिति में वह अपनी दिव्य इन्द्रियों द्वारा असीम दिव्य सुख में स्थित रहता है। इस प्रकार स्थापित मनुष्य कभी सत्य से विपथ नहीं होता है, और इस सुख की प्राप्ति हो जाने पर वह इससे बड़ा कोई दुसरा लाभ नहीं मानता। ऐसी स्थिति को पाकर मनुष्य बड़ी से बड़ी कठिनाई में भी विचलित नहीं होता होता है। यह निःसंदेह भौतिक संसर्ग से उत्पन्न होने वाले समस्त दुःखों से वास्तविक मुक्ति है अर्थात् योगाभ्यास से मनुष्य भौतिक धारणाओं से कमशः विरक्त होता जाता है। यह योग का प्रमुख लक्षण है। दिव्य मन तथा बुद्धि द्वारा योगी अपने आपको परमात्मा समझने का भ्रम न करके परमात्मा की अनुभूति करता है।

अद्वैतवादी ज्ञान तथा ज्ञाता के द्वैत को नहीं मानते, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता में दिव्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत दिव्य आनन्द को स्वीकार किया गया है और इसकी पुष्टि योगपद्धति के विख्यात व्याख्याता पतंजली मुनि ने भी की है।

पुरुषार्थशुन्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा
वा चितिशक्तिरिति ॥८॥

मनुष्य को चाहिए संकल्प तथा श्रद्धा के साथ योगाभ्यास में लगे और पथ से विचलित न हो । उसे चाहिए कि मनोधर्म से उत्पन्न समस्त इच्छाओं को निरपवाद रूप से त्याग दे और इस प्रकार मन के द्वारा सभी ओर से इन्द्रियों को वश में करें।

यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ६ ॥

मन स्वभाव से चंचल और अस्थिर है। किन्तु स्वरूप सिद्ध योगी को मन को वश में लाना होता है, उस पर मन का अधिकार नहीं होना चाहिए । जो मन को तथा इन्द्रियों को भी वश में रखता है वह गोस्वामी या स्वामी कहलाता है, और जो मन के वशीभूत होता है, वह गोदास अर्थात् इन्द्रियों का सेवक कहलाता है। अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अष्टांगयोग पद्धति से सम्बन्धित जो भी वर्णन किया है, उसे अर्जुन अपनी असमर्थता के कारण अस्वीकार करता है। और इस कलियुग में भी सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव यह नहीं है कि वह अपना घर छोड़कर किसी पर्वत या जंगल के एकान्त स्थान में जाकर योगाभ्यास करें । आधुनिक युग की विशेषता है—अल्पकालिक जीवन के लिए घोर संघर्ष । लोग सरल व्यावहारिक साधनों से भी आत्म—साक्षात्कार के लिए उत्सुक या गंभीर नहीं हैं तो फिर इस जीवन शैली, आसन विधि, स्थान के चयन तथा भौतिक व्यस्तताओं से विरक्ति का नियमन करती है। व्यावहारिक व्यक्ति के रूप में अर्जुन ने सोचा कि इस योग पद्धति का पालन असम्भव है। अर्थात्

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥१०॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवदृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥११॥

मन इतना बलवान् तथा दुराग्रही है कि कभी कभी यह बुद्धि का उल्लंघन कर देता है, यद्यपि उसे बुद्धि के अधीन माना जाता है। इस व्यवहार जगत् में जहाँ मनुष्य को अनेक विरोधी तत्त्वों से संघर्ष करना होता है, उसके लिए मन को वश में कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। कृत्रिम रूप से मनुष्य अपने मित्र तथा शत्रु दोनों के प्रति मानसिक संतुलन स्थापित कर सकता है, किन्तु अन्तिम रूप में कोई भी संसारी पुरुष ऐसा नहीं कर पाता, क्योंकि ऐसा कर पाना वेगवान वायु को वश में करने से भी कठिन है। जैसा कि वैदिक साहित्य में भी कहा गया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि ध्यानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥१२॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु अभ्यास द्वारा तथा विरक्ति द्वारा ऐसा संभव है। जिसका मन चंचल है उसके लिए आत्म—साक्षात्कार कठिन कार्य होता है।

किन्तु जिसका मन संयमित है और जो समुचित उपाय करता है, उसकी सफलता ध्रुव है। यदि कोई समस्त भौतिक आशाओं को त्यागकर भगवान् की शरण में जाता है तो इसमें न तो कोई क्षति होती है और न पतन । दूसरी ओर अभक्त जन अपने—अपने व्यवसायों में लगे रह सकते हैं फिर भी वे कुछ प्राप्त नहीं कर पाते हैं। भागवतपुराण आश्वस्त करता है कि असफल योगी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। भले ही उसे ठीक से स्वधर्माचरण

ना करने का फल भोगना पड़े तो भी उसे कोई नुकसान नहीं होगा क्योंकि शुभ कृष्णाभावनामृत कभी विस्मृत नहीं होता।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मा ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्त तमो मतः ॥१३॥

यहाँ पर भजते शब्द महत्वपूर्ण है। भजते भज् धातु से है जिसका अर्थ है—सेवा करना । अंग्रेजी शब्द वर्शिप (पूजन) से यह भाव व्यक्त नहीं होता, क्योंकि इससे पूजा करना, सम्मान दिखाना तथा योग्य का सम्मान करना सूचित होता है। किन्तु प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक सेवा तो श्रीभगवान् के निमित्त है। किसी सम्मानीय व्यक्ति या देवता की पूजा न करने वाले को अशिष्ट कहा जा सकता है, किन्तु भगवान् की सेवा न करने वाले की तो पूरी तरह से दुरगति होती है। प्रत्येक जीव भगवान् का अंशस्वरूप है और इस तरह प्रत्येक जीव को अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् की सेवा करनी चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्य के जानने वाले हैं। भगवद्गीता के प्रारम्भ में भगवान् ने कहा है कि सारे जीव व्यष्टि रूप में भूतकाल में विद्यमान थे, इस समय भी विद्यमान हैं और भवबन्धन से मुक्त होने पर भविष्य में भी व्यष्टि रूप में बने रहेंगे। अतः भक्तियोग समस्त योगों की परिणति है। अन्य योग तो भक्तियोग में भक्ति तथा पहुँचने के साधन मात्र हैं। योग का वास्तविक अर्थ भक्तियोग है, अन्य सारे योग भक्तियोग रूपी गन्तव्य की दिशा में अग्रसर होते हैं कर्मयोग से लेकर भक्तियोग तक का लम्बा रास्ता आत्म—साक्षात्कार तक जाता है। निष्काम कर्मयोग इस मार्ग का आरम्भ है। जब कर्मयोग में ज्ञान तथा वैराग्य की वृद्धि होती है। यह अवस्था ज्ञानयोग कहलाती है। जब ज्ञानयोग में अनेक भौतिक विधियों से परमात्मा के ध्यान में वृद्धि होने लगती है। और मन उन पर लगा रहता तो इसे अष्टांगयोग कहते हैं। इस अष्टांगयोग को पार करने पर जब मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के निकट पहुँचाता है तो यह भक्तियोग कहलाता है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता — ३/१० श्रीमद्भगवद्गीता — ६/७
2. भवितरसामृतसिन्धु— १/२/२३४
3. ब्रह्मसंहिता — ५/३७
4. श्वेताश्वतर उपनिषद् — ३/८
5. श्रीमद्भगवद्गीता ६/१६
6. श्रीमद्भगवद्गीता ६/१६
7. योगसूत्र — ३/३४
8. श्रीमद्भगवद्गीता — ६/२६
9. श्रीमद्भगवद्गीता ६/३३
10. श्रीमद्भगवद्गीता ६/३४
11. कठोपनिषद् — १/३/३ — ४
12. श्रीमद्भगवद्गीता ६/४७